राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

(प्रधान सम्पादक–फतहसिंह एम.ए.,डी.लिट्.)
(निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

ग्रन्थांक 89

लावण्यशर्मविरचितः

शकुन–प्रदीपः

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

जोधपुर (राजस्थान)

2009

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

(प्रधान सम्पादक–फतहसिंह एम.ए.,डी.लिट्.)

ग्रन्थांक 89

लावण्यशर्मविरचितः

शकुन–प्रदीपः

भूमिका–लेखक

फतहसिंह

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर (राजस्थान)

प्रथमावृत्ति वि.सं. 2024 प्रति संख्या 750 1968 ई.
द्वितीयावृत्ति वि.सं.2066 प्रति संख्या 500 मूल्य 20 रु. 2009 ई.

निदेशकीय

विभाग के हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह में संगृहीत लावण्यशर्म विरचित 'शकुन प्रदीपः' का प्रथम संस्करण राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के तहत 1968 में ग्रन्थांक 89 के रूप में प्रकाशित किया गया था। ग्रन्थ के प्रणेता लावण्यशर्म ने अपनी रचना में जांघिक प्रकरण, क्षेत्रिक–प्रकरणम् व आकस्मिक प्रकरण के द्वारा विभिन्न शकुनों का प्रतिपादन किया है।

प्रथम संस्करण की अनुपलब्धता एवं विद्द्वजनों के सतत् आग्रह के स्वरूप द्वितीय संस्करण प्रस्तुत है। आशा है कि इस संस्करण के प्रकाशन से शोधार्थियों एवं विद्द्वजनों की दीर्घ कालीन प्रतीक्षा एवं ज्ञान पीपासा का शमन होगा।

वन्दना सिंघवी
आर.ए.एस.
निदेशक
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

विषयानुक्रमः

प्रधान-सम्पादकीय वक्तव्य

श्री मुनि जिनविजय के समय में यह ग्रंथ १६५६ में छपकर तैयार हो गया था, परन्तु कुछ कारणों से इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका, इसका हमें खेद है ।

इस ग्रंथ द्वारा प्रतिष्ठान एक ऐसे शास्त्र को प्रकाश में ला रहा है जिसने लोक-मानस में सदा से एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना रक्खा है । वर्तमान विज्ञान-युग में प्रायः इस विषय पर कोई ग्रंथ लिखने का साहस तो नहीं ही करता है, परन्तु इस विषय पर लिखित प्राचीन ग्रंथों की चर्चा भी बहुत कम देखने को मिलती है । 'भारतीय ज्योतिष' शीर्षक से लिखित स्वर्गीय श्री शंकरबालकृष्ण दीक्षित की मराठी पुस्तक में अवश्य 'शकुन' को ज्योतिष के संहितास्कंध का ही एक अंग होने के कारण आधा पृष्ठ मिला है जिसमें संवत् १२३२ विक्रमी में लिखित नरपति-जयचर्या नामक ग्रंथ का उल्लेख हुआ है । यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है, परन्तु इसका महत्त्वपूर्ण अंश उसमें नहीं है । हमारे प्रतिष्ठान में इस महाग्रंथ की पूरी प्रति विद्यमान है जिसका प्रकाशन निकट भविष्य में किया जायेगा । वि.सं. १६६३ में पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत व्रजभाषा-टीका के साथ 'वसन्तराज' नामक ग्रंथ भी शकुनशास्त्र पर प्रकाशित हुआ था, परन्तु अभी तक उस पर भी कोई चर्चा नहीं हो पाई । इस विषय के और भी हस्तलिखित ग्रंथ इस प्रतिष्ठान के संग्रह में विद्यमान हैं जिनमें से कुछ के नाम निम्नलिखित हैं:—

१	अर्घ्यकाण्डम्	१२	चतुरक्षरपाशाकेवली
२	अर्घ्यदीपिका	१३	चन्द्रगुप्तस्वप्नफलम्
३	अक्षरचिन्तामणिः	१४	चैत्राद्यर्घ्यकाण्डम्
४	कष्टावलीचक्रम्	१५	छायापुरुषलक्षणम्
५	कालचक्रम्	१६	ज्योतिषशास्त्रज्ञानम्
६	केरलीयप्रश्नम्	१७	ज्ञानप्रदीपः
७	खंजनदर्शनफलम्	१८	ज्ञानमञ्जरी
८	गर्गमनोरमा	१९	त्रिकालज्ञानमानसचिन्तामणिः
९	गूढप्रश्नप्रकाशनम्	२०	त्रैलोक्यप्रकाशः
१०	गृहगोधिकाविचारः	२१	द्वादशभावप्रश्नलग्नादिविचारः
११	ग्रहनक्षत्रलग्नकेवली	२२	द्वादशराशिशनैश्चरार्घ्यकाण्डम्

२३	नरपतिजयचर्या
२४	नष्टजन्ममृत्युपरिज्ञानम्
२५	नष्टजातकम्
२६	नष्टजातकप्रश्नज्ञानम्
२७	नष्टज्ञानम्
२८	नष्टोद्दिष्टविधिः
२९	नामप्रश्नः
३०	पञ्चपक्षीटिप्पणम्
३१	पञ्चपक्षीप्रश्नः
३२	पञ्चपक्षीनिदर्शनम्
३३	पञ्चपक्षीशकुनशास्त्रम्
३४	पञ्चसारः
३५	पञ्चसारनिर्णयः
३६	पल्लिकादिविचारः
३७	पवनविजयम्
३८	पाशाकेवली
३९	प्रश्नकालज्ञानम्
४०	प्रश्नकोष्ठकम्
४१	प्रश्नकौमुदी
४२	प्रश्नचण्डेश्वरम्
४३	प्रश्नचिन्तामणिः
४४	प्रश्नचूडामणिः
४५	प्रश्नज्ञानम्
४६	प्रश्नतत्वम्
४७	प्रश्नतन्त्रम्
४८	प्रश्नप्रकरणम्
४९	प्रश्नप्रदीपः
५०	प्रश्नप्रस्तारचक्रनिरूपणम्
५१	प्रश्नभैरवः
५२	प्रश्नमार्गः
५३	प्रश्नमाणिक्यमाला
५४	प्रश्नरत्नम्
५५	प्रश्नरत्नमाला
५६	प्रश्नविद्यास्वरोदयः
५७	प्रश्नविद्या
५८	प्रश्नवैष्णवशास्त्रम्
५९	प्रश्नशास्त्रम्
६०	प्रश्नशिरोमणिः
६१	प्रश्नसंग्रहः
६२	प्रश्नसप्ततिः
६३	प्रश्नसारः
६४	प्रश्नसारयन्त्रम्
६५	प्रश्नोत्तरस्वरोदयशास्त्रम्
६६	प्रश्नसुधाकरः
६७	मयूरचित्रम्
६८	मानकेवलीशकुनावली
६९	माहेन्द्रमण्डलविचारः
७०	मुहूर्तकल्पद्रुमः
७१	मुहूर्तचिन्तामणिः
७२	मुहूर्तमार्तण्डः
७३	मुष्टिचक्रम्
७४	मेघमाला
७५	यात्राभावः
७६	युद्धकौशलम्
७७	युद्धजयोत्सवः
७८	योगयात्रा
७९	रघुवंशशकुनावली
८०	रमलचिन्तामणिः
८१	रमलज्योतिषम्
८२	रमलनवरत्नम्
८३	रमलप्रश्नतन्त्रम्
८४	रमलबिन्दुः
८५	रमलसारः
८६	रमलसारसंग्रहः
८७	रमलबिन्दुप्रकाशः
८८	लघुप्रश्नप्रदीपः
८९	वसन्तराजशाकुनम्
९०	वसन्तराजसारोद्धारः
९१	वामदेवफलम्
९२	विजयप्रशस्तिः
९३	वृष्टिज्ञानम्
९४	शंभुवचनामृतघटिका
९५	शकुनदिशाफलम्
९६	शकुनप्रदीपचूडामणिः

९७	शकुनशास्त्रम्	१०९	स्वरविचारः
९८	शकुनसारः	११०	स्वरोदयः
९९	शकुनावलिः	१११	स्वरोदयविचारः
१००	शतसंवत्सरिः	११२	स्वरोदयशास्त्रम्
१०१	शिवालिखितशास्त्रम्	११३	स्वरोदयज्ञानम्
१०२	शिवस्वरोदयः	११४	समरसारः
१०३	शुभाशुभफलचक्रम्	११५	सर्वतोभद्रचक्रम्
१०४	षट्पञ्चाशिका	११६	सद्योवर्षणम्
१०५	स्वप्नचिन्तामणिः	११७	सामुद्रिकम्
१०६	स्वप्नाद्भुतावर्तः	११८	सुदर्शनचक्रम्
१०७	स्वप्नाध्यायः	११९	हयग्रीवभाषितप्रश्नसारः
१०८	स्वरपञ्चाशिका	१२०	हंसचक्रम्

यद्यपि शकुनों पर विश्वास करके भारतीय जनता ने अतीत में बहुत सी भूलें की हैं और आज भी 'अंध-विश्वास' के रूप में हमारे समाज में प्रचलित हैं, परन्तु इस विश्वास और मान्यता के मूल में ऐसी कौनसी अतीन्द्रिय अथवा अलौकिक शक्ति है जिसका प्रभाव मानवजाति को न केवल इस देश में अपितु, न्यूनाधिक रूप से, समस्त भूमण्डल पर आक्रान्त किये हुए है, इस बात की वैज्ञानिक गवेषणा होना आवश्यक है। आशा है इस विषय में रुचि रखने वाले व्यक्ति इस दिशा में प्रयत्न करेंगे।

'शकुन-प्रदीप' एक छोटा सा ग्रंथ है। इसका प्रारंभ ब्रह्मा के रजोगुण, विष्णु के नीललोहित नयनयुगल तथा गरल-पान किये हुए शिव के स्तवन से होता है और इसी प्रसंग में उस 'वाङ्मय ज्योति' की विजय की भी कामना की गई है जो परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नाम से सारे विश्व-प्रपञ्च का नियमन करती है। भारतीय परंपरा के अनुसार यही 'ज्योति' अथवा शक्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव के क्रमशः सृष्टि, पालन और संहार में कार्य करती है और इसी शक्ति की अभिव्यक्ति नानारूपात्मक जगत् के प्रत्येक घटक में होरही है। आज का विज्ञान भी मानता है कि सारे विश्वप्रपंच के मूल में एक ही शक्ति है, चाहे वह वैद्युत-चुम्बक (electromagnetic) हो अथवा कोई अन्य। ऐसी अवस्था में, यह असंभव नहीं है कि विश्व के विभिन्न घटकों के बीच कोई अदृश्य संबंध हो, और इसके फलस्वरूप एक क्षेत्र की घटना के उद्भव, विकास और अवसान की अभिव्यक्ति अन्यत्र भी किसी न किसी रूप में होती हो। यदि यह शक्ति चिद्रूपा है, तो विभिन्न चैतन्य प्राणियों के भीतर स्थित चिन्मय

केन्द्रों द्वारा इसके ग्रहण किए जाने की संभावना और भी अधिक हो जाती है ।

शकुन-शास्त्र का एक प्रमुख अंग स्वरोदयशास्त्र का है । मनुष्य जो सांस लेता है, वह कभी केवल बाएँ नथुने से आती है, कभी केवल दायें से और कभी दोनों से, कभी वह नथुनों से एक इंच चलकर ही बिखर जाती है और कभी दो, तीन, चार अथवा इससे अधिक इंचों तक जाकर बिखरती है । यह सब क्यों ? स्वरोदय शास्त्र के अन्तर्गत इस प्रकार की सभी समस्याओं का अध्ययन करके कुछ निश्चित निष्कर्ष निकाले गए हैं । जिस शक्ति का ऊपर उल्लेख किया गया है वह आगमों के अनुसार सूर्य, अग्नि तथा चन्द्र तत्त्वों से युक्त है और इन तीनों तत्त्वों का संबंध पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि तथा जलतत्त्वों से है । स्वरोदयशास्त्र केवल श्वासोच्छ्वास-क्रिया के आधार पर ही उक्त सभी तत्त्वों का विवेचन करता है और उसके द्वारा भविष्य की घोषणा करने में समर्थ होता है । इसी प्रकार स्वप्नशास्त्र आदि के विषय भी इसी के अन्तर्गत आते हैं जिनका अध्ययन अपेक्षित है । अतः इस विषय की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए ।

प्रस्तुत लघु ग्रंथ द्वारा यदि विषय पर शोध-खोज प्रारंभ हो सकी, तो प्रतिष्ठान इस प्रकाशन को सार्थक समझेगा और इस शास्त्र के अन्य ग्रंथों का भी प्रकाशन करेगा ।

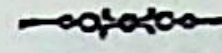
—फतहसिंह

बसन्त पंचमी, सं० २०२४
जोधपुर

लावण्यशर्मविरचितः

शकुन प्रदीपः

प्रथमं जाङ्घिकप्रकरणम्



चातुर्विध्यमहानिधिपिशुनं कण्ठैकनालजं धातुः ।
वक्त्राम्भोजचतुष्टयमुद्दामरजोगुणं जयति ॥ १
तज्जयति नयनयुगलं समररुषा नीललोहितं विष्णोः ।
यस्मादसुरस्त्रीणां गण एष विनायको जातः ॥ २
स जयति यः श्रीकण्ठः कवलितगरलवलितेन कण्ठेन ।
परमेश्वरश्च संचितनिबिडैककपर्द्दिविभवेन ॥ ३
जयति परा पश्यन्ती मध्यमिका वैखरीति संज्ञाभिः ।
विहितविविधप्रपञ्चं विश्वमयं वाङ्मयं ज्योतिः ॥ ४
अपद-द्विपद-चतुष्पद-षट्पादष्टापदामितपदस्य ।
शकुनमनुभूतसारं वक्ष्यामो जन्तुजातस्य ॥ ५
यच्छकुनशास्त्रसारं स्वयमनुभूतं प्रभूतवारं यत् ।
यच्छिष्टैरुपदिष्टं विषयविभागेन तद् ब्रूमः ॥ ६
त्रिविधमिह भवति शकुनं क्षेत्रिकमागन्तु जांघिकं चान्यत् ।
क्षेत्रे स्थाने वर्त्मनि शुभाशुभानां तु फलपिशुनम् ॥ ७
शकुनक्षेत्रे तोरणपरिकल्पनया प्रश्ननियतफलकम् ।
कृत्वाऽधिवासनाढ्यं यदीक्ष्यते क्षेत्रिकं तत् स्यात् ॥ ८
स्थानस्थानां शकुनं यदकस्माद्दिग्विभागतो भवति ।
शान्तप्रदीप्तभेदाद् व्यक्तफलं प्रथितमागन्तु ॥ ९
सव्यापसव्यसम्मुख-पृष्ठे ग्रामेय-वन्यसत्त्वानाम् ।
शकुनं स्वर-गति-चेष्टाभावैः पथि जांघिकं नाम ॥ १०

नागन्तु वेत्ति सकलः, शकुनं क्षेत्रेऽपि नेक्ष्यते सर्वैः ।
सर्वस्य तु पथि कार्यं तन्मुख्यं जांघिकं शकुनम् ॥ ११
आचार्यैर्यद्विहितं बहुना ग्रन्थेन तदहमल्पाभिः ।
निखिलमुपयोगि शकुनं कार्यस्यार्याभिरभिधास्ये ॥ १२
यत्राभिधेयहानिः क्लिष्टोक्त्या वस्तुविप्लवो वा स्यात् ।
ते क्लेशा इव लोके दुर्विदुषां शास्त्रसंक्षेपाः ॥ १३
मथयित्वा शकुनार्ण्णवमुद्धृत्य सुधासहोदरं सारम् ।
उपनीयते मयैतत् मोदध्वमतोऽधिकं विबुधाः ॥ १४
प्रीतः प्रशस्तमाल्यः कृतमाङ्गल्यः प्रणम्य गुरुदेवान् ।
अप्रतिरथं जपित्वा शुभे मुहूर्ते प्रतिष्ठेत ॥ १५
या वहति तत्र समये नाडी चरणं तदग्रतः कृत्वा ।
अन्तःप्राणे प्रविशति यायाद् वैनयिकवेषेण ॥ १६
आमन्द्रैरित्युक्त्वा ध्यात्वा देवेन्द्रमश्वमारोहेत् ।
यद् यां दिशं क्रमोक्तान् मातङ्गमयाश्वनरयानान् ॥ १७
ग्राम्यं निमित्तमादौ पथि दुर्गा तित्तिरी निशि शृगालाः ।
ध्रुवमेते यात्रायां चतुष्टयं तुष्टये ग्राह्यम् ॥ १८
दधि-दूर्वाक्षत-पल्लव-शंख-श्रीखण्ड-रत्न-कुसुमानि ।
आदर्शामिषमृत्स्ना-गोमय-गोरोचन-मधूनि ॥ १९
अम्भःकुम्भाम्भोरुह-चामर-भृङ्गार-हैम-रूप्याणि ।
फल-ताम्बूल-वराम्बर-मीनामदिराज्यभोज्यानि ॥ २०
वेत्रासनातपत्र-ध्वज-कुञ्जर-वाजि-यानपर्यङ्काः ।
अज-वृषभ-व्यजनाञ्जनसिद्धार्थाभरणताम्राणि ॥ २१
दुग्धौषधि-वरवाद्य-प्रदीप-जयशब्दनिर्घोषाः ।
प्रमदा वनप्रमोदा दोग्ध्री वत्सान्विता धेनुः ॥ २२
आशीर्वादमुखा स्त्री मन्त्रमुखो ब्राह्मणः शिशुः प्रियवाक् ।
कुशलं पृच्छन्नतिथिः प्रियसुहृदानन्दपरिपूर्णः ॥ २३
उज्ज्वलशोभाभरणा रुचिराम्बरधारिणी विमलमाल्या ।
हसितवती फलहस्ता पथि शस्ता सम्मुखी युवतिः ॥ २४

शीतः सुरभिर्विरजाः प्रदक्षिणं मारुतः शनैः सर्प्पन् ।
वृष्टिः प्रयाणकाले मनसश्चाभीष्टमावहति ॥ २५
सिद्ध्यै यातुरविघ्नं श्रुतपथयाताः प्रयाणसमकाले ।
नान्दी मङ्गलतूर्यः प्रास्थानिकशंखनिर्घोषाः ॥ २६
निर्यन्तं विषयाणां यो यो विषयः स्वमिन्द्रियमुपैति ।
हृद्यो गुणः स सिद्धिं जनयति कार्योद्यमं पुंसाम् ॥ २७
इत्यादि मङ्गलं यन्नयनपथं प्राप्य जनयति प्रीतिम् ।
तद् यात्रासु शुभार्थी दृष्टं पथि दक्षिणं कुर्यात् ॥ २८
सिद्ध्यै केनचिदुक्तं पृष्टो गच्छेति पुरुष एहीति ।
मा गाः क्व यासि तिष्ठेत्येवं रूपं निषेधाय ॥ २९
वामं रोदनमाहुः शस्तं यदि रोदिता न दृश्यः स्यात् ।
शंसन्ति द्वेष्याणां तोरणरुदितं च संसिद्ध्यै ॥ ३०
आसन्नोच्चैरचिराद् दूराद् दूरस्थितेर्नृणां सिद्धिः ।
स्वस्थानस्थैः शकुनैः स्वकालबलशालिभिः सम्यक् ॥ ३१
योजनशेषे नगराद् ग्रामात् कोशान्तरे पथि त्याज्यम् ।
कल्याणं वाञ्छद्भिः पथिकैर्गीतं च हास्यं च ॥ ३२
दृष्टं शवं प्रयाणे रोदनवन्ध्यं शिवानि साधयति ।
दत्तं तु सप्रवेशे दीर्घरुजं दीर्घनिद्रां वा ॥ ३३
अञ्जनकुलचाषखञ्जनशिखिनो रुतदृष्टकीर्त्तिताः शुभदाः ।
अहि-जाहक-शश-शूकर-गोधाद्याः कीर्त्तनादेव ॥ ३४
दृष्ट-रुताभ्यामेव प्रयाणकाले शुभानि साधयतः ।
न पुनरभिधीयते ते वानर-भल्लूकयोरभिधे ॥ ३५
यदि रक्तकलशहस्तः सलिलार्थी याति गच्छता सार्द्धम् ।
विनिवर्त्तते कृतार्थः पुनश्च पान्थस्तथैव स्यात् ॥ ३६
वामस्वरः खरः स्यादविकृतचेष्टः प्रशान्तदिक्संस्थः ।
वामगतिः सद्वर्णो दक्षिणचेष्टः शुभः शुनकः ॥ ३७
केशास्थिलोहशृङ्खल-भस्मेन्धनरज्जुरिक्तभाण्डानि ।
कर्पासतुखावस्कर-विष्टागुडचर्मलवणानि ॥ ३८

दीनः कृपणो मत्तः प्रव्राजकविकृतवेषसाक्रन्दाः ।
छिन्नाङ्गखर्वशाखः क्रमेण रोगार्त्तहृदमानाः ॥ ३९
तक्रवसातृणकर्प्पर-पिण्याकाङ्गारभुजगमार्जाराः ।
तैलमलान्वितकृष्णा रिपुरासभसेरभारूढाः ॥ ४०
वमदन्त्यजगर्भवतीरजस्वलातैलदिग्धसंक्रुद्धाः ।
औषधविमुक्तकेशा प्रभृति यदीदृक् तदपि निन्द्यम् ॥ ४१
मार्जारमहिषयुद्धं स्तनितगृहज्वलनबन्धुकलहाद्यम् ।
विद्युद्वात्या दुर्दिनमयात्रिकं सूतके द्वे च ॥ ४२
प्रगुणमुपेक्ष्य न यायादशनमलस्नानमङ्गलप्रभृति ।
असमाप्य च वनितार्त्तवमुत्सवमुद्वाहमुख्यं च ॥ ४३
क्षोभपलायनभङ्गस्खलनविपर्यासवेदशब्दादि ।
यन्मुख्यवाहनानां तदपि निषेधाय गमनस्य ॥ ४४
यस्यारूढस्य रथः पर्यस्यति भज्यते युगं धूर्वा ।
प्रस्थाने न स गच्छेद् यदि वाञ्छेदात्मनः कुशलम् ॥ ४५
संहारबीजबहुला केनचिदुक्ता प्रशस्यते नाशीः ।
गमने यद्वत् साक्षात् त्र्यक्षः क्षपयतु विपक्षं ते ॥ ४६
उत्पाताय च काव्ये दुरुपश्रुतिरभिनये च नाट्यानाम् ।
स्वस्थानामपि यद्वद् ध्वस्ताधारा धरित्रीति ॥ ४७
आर्त्तद्रुतखरजर्ज्जर-विहीनदीनप्रभिन्नलघुरौद्राः ।
निन्द्याः; शुभाः सुशब्दाः प्रमुदितपरिपूर्णदृढशान्ताः ॥ ४८
प्रस्थाने स्वस्त्ययने मन्त्रपदोच्चारणप्रवीणस्य ।
विप्रस्य हीयमानो न भिद्यमानः स्वरः शस्तः ॥ ४९
छत्रध्वजावपाता मङ्गलदीपोपशान्तिरभियुद्धम् ।
करिणीमदस्तरूणामकालफलकुसुमसंभेदाः ॥ ५०
प्रतिसूर्यदर्शनोल्का-प्रपात-केतु-प्रबोध-निर्घाताः ।
वृष्टिकरकावपाता राज्ञां प्रस्थानविघ्नाय ॥ ५१
मूकतिलन्तुदजालिकवागुरिकव्याधितान्धवद्धाङ्गाः ।
पाषण्डि-दण्डपाशिक-षंढकमुण्डाहितुण्डिका निन्द्याः ॥ ५२

कालेयरक्त-चन्दन-रक्ताम्बर-माल्यहिङ्गुलोकाद्यम् ।
आधाय प्रस्थाने गन्ता रोगार्द्दितोऽभ्येति ॥ ५३
कटुतैल-दुग्ध-मांस-क्षार-गुड-क्षौद्रभोजनाः पुरुषाः ।
रोगवशंवदवपुषः प्रस्थाय पुनर्न निवर्त्तन्ते ॥ ५४
मुण्डन-विमन (वपन) विकर्त्तन-तैलाभ्यङ्गाश्रुमोक्षमुख्यानि ।
मैथुन-मद्य-दुरोदर-कलहानपि वर्ज्जयेत् तदहः ॥ ५५
संताप्य कमपि पुरुषं विप्रानवमन्य बालमाहत्य ।
निर्भर्त्स्य योगिनो वा प्रयाति नायाति पुनरेव ॥ ५६
शश-सरट-भुजग-जाहक-मार्ज्जारैर्ल्लंघिते पथि न यायात् ।
द्वाराभिघात-चरण-स्खलनदशासंगमेष्वपि च ॥ ५७
ग्रामाद् बहिर्व्रजित्वा स्तोकान्तरे मधुमद्यमध्यास्य ।
उच्चार्य स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यं दुर्गां ततोऽभ्यर्च्य ॥ ५८
तदपि कपिञ्जलसूक्तिं विद्वानेकादशार्थमुच्चार्य ।
दुर्गासूक्तमथोक्तान् शकुनानवलोकयेद् गच्छन् ॥ ५९
अविकृतकृतभूमिरवा, स्वस्थानस्था न चेष्टिता वामे ।
यात्रासु दृष्टमात्रा दुर्गा दुर्गाणि तारयति ॥ ६०
दृष्ट्वा (ष्टा) प्रागुपविष्टा शान्तरवाऽनन्तरं गता तारा ।
रुचिरस्थानकृतस्थितिरभिमतफलदायिनी दुर्गा ॥ ६१
उन्नतदक्षिणपक्षा भक्ष (क्ष्य) मुखी विहितपार्थिवनिदाना ।
तारा तरुमधिगच्छति फलं तदा वाञ्छितादधिकम् ॥ ६२
अग्रेसरी कुमारी तत्पृष्ठे पुंस्खगो यदा तारः ।
सिद्धिस्तदोत्तमा स्याद् दृष्टाऽप्यादौ वरा दुर्गा ॥ ६३
दृष्टा वामे श्यामा भवति स्वपक्षेऽपि तत्र याऽवस्था ।
सा स्वस्य भवति नियतं भवति विपक्षे विपक्षस्य ॥ ६४
उड्डीयोद्ध्वं गगने निपतत्यवनावधोमुखी शकुनिः ।
वामे यातुर्निधनं दिशति विपक्षे विपक्षस्य ॥ ६५
सुख-दुःख-हर्ष-शोक-प्रभृति यदाप्नोति दैवतः शकुनिः ।
साऽवस्था मन्तव्या स्वहेतुकं कर्मचेष्टा स्यात् ॥ ६६

दैवाद् भूतकृतां वा दुर्गतिमाध्यात्मिकीं च दुर्गायाः ।
पश्यन् मन्येतात्मन्यात्मसमे पुंस्खगावस्थाम् ॥ ६७
अभ्युन्नतिप्रमोदप्रियसंगममुख्यलाभमुख्यं यत् ।
पक्षे स्यात् पक्षिण्यास्तत् स्वस्यान्यत्र शत्रूणाम् ॥ ६८
श्येनाहिनकुलविद्युद्रोगादेर्भवति या किलावस्था ।
श्वभ्रास्थिभस्मदीप्ताश्रयणाद्यं यच्च चेष्टा सा ॥ ६९
चापच्युतेव गुलिका वियति जवाद् याति दूरदेशे या ।
तारा रणाय गन्तुर्वामा स्यात् सा तु मरणाय ॥ ७०
सम्मुखमायान्ती वा पृष्ठिरवा तिरो भवन्ती वा ।
अत्यन्तपृष्ठचेष्टा या वा सा वारयेद् गमनम् ॥ ७१
नीचैर्याति च नीचं फलमधमाद्वा चिरेण वा दिशति ।
मध्येन मध्यमात्रं पूर्णं तूर्णं शिरः सीम्नि ॥ ७२
युगमाने बहुतूर्णं युगयुग्मे मध्यमं विलम्बेन ।
त्रियुगान्तरेति तारा फलमल्पं दिशति चिरकालात् ॥ ७३
आदौ दर्शयति नतिं यान्ती यान्ती समुन्नतिं धत्ते ।
अनुकूलाऽपि वराही चिरेण तुच्छं फलं दत्ते ॥ ७४
उच्चैरुड्डयमाना नतिमन्ते या वहति गच्छन्ती ।
यच्चिरलभ्यमथाल्पं तत् सा बहु यच्छति त्वरितम् ॥ ७५
वामे विधाय शब्दं यात्यनूकुला करोति च विरावम् ।
वामा ततोऽपि भूत्वा रौति तदा बहुफला देवी ॥ ७६
वामे विहितविरावा तारा भूत्वा करोति शब्दं या ।
सा विनिहत्य गतेः फलमाद्यरवोत्थं फलं दत्ते ॥ ७७
त्वरितं यान्ती त्वरितं पूर्णं च समीहितं फलं जनयेत् ।
मध्यफला सविलम्बा हीनफला सुचिरगमना तु ॥ ७८
या याति मौनिनीव प्रदक्षिणं ह्यवामशब्दा च ।
ऋज्वी शुभाय गमने वामा ग्रामप्रवेशे तु ॥ ७९
यद्येका दक्षिणगा वामाऽन्या तद् द्वयमुपेक्ष्याथ ।
अन्या गवेषणीया मिश्रत्वे फलस्य मित्तत्वम् ॥ ८०

पृष्ठाभिमुखी पृष्ठे कार्यं नास्तीति सम्मुखी ब्रूते ।
तारा लाभाय पुरः पृष्ठे न हृच्चर्थलाभाय ॥ ८१
पक्षे पक्षग्रहणं लाभाय विपक्षसंभवं हान्यै ।
पञ्चानामपि मुख्या भक्षाप्तिर्दर्शनादीनाम् ॥ ८२
दर्शनचेष्टास्वरगतिभक्षग्रहणेष्वधिकमधिकं स्यात् ।
क्रमशो बलमेतेषां समुदायः सकलफलहेतुः ॥ ८३
वामस्वरा समृद्धि दक्षिणनादा निषेधमाचरति ।
सम्मुखशब्दाऽनर्थं पृष्ठरवा वदति पृष्ठेऽर्थम् ॥ ८४
एकापि पञ्च शान्ता तारा वाञ्छाप्तये शुभासीना ।
ताल (लाभ) मुभाभ्यामधिकं तिस्रो राज्याय यात्रायाम् ॥ ८५
क्षेत्रे ग्रामं ग्रामे नगरं नगरेषु मण्डलावाप्तिः ।
तस्यामुर्व्वीत्येवं यो लाभो राज्यमाहुस्तम् ॥ ८६
वामरवा शशिनाड्यां पूर्णायां तारगा च बलयुक्ता ।
दक्षिणरवाऽथ वामा पूर्णबला पिङ्गला वारे ॥ ८७
रिक्तायां तुच्छफला पूर्णायां निष्फला विरुद्धाय ।
रिक्तायामनभीष्टा शकुनिर्महते त्वनर्थाय ॥ ८८
क्रोशादन्तर्बलवान् क्रोशादूर्द्ध्वं च निष्फलः शकुनः ।
यस्तु न जातः क्वचिदपि स स्यात् पुनरपुनरावृत्त्यै ॥ ८९
प्राणायामानष्टौ प्रथमे कुर्यात् द्वितीयके द्विगुणान् ।
अपशकुनेऽति तृतीये जाते तदहस्त्यजेद् यात्राम् ॥ ९०
क्षुतमाकर्णितमेकं कार्यारम्भस्य शंसति निषेधम् ।
व्यर्थं पौनःपुनिकं हठेन हास्यादिविहितं वा ॥ ९१
कार्योद्यमे न शस्तं क्षुतं न यात्राप्रवेशयोः शस्तम् ।
आद्यन्तयोर्न शस्तं शयनस्य भोजनस्यादौ ॥ ९२
जायेत भोजनान्ते यदि क्षुतं वासरे तदन्यस्मिन् ।
लभते भोज्यविशेषं क्षुतं गवां जीवितान्ताय ॥ ९३
कार्यं कृतेऽपि यस्मिन् भवेत्तत्गुमपि (?) सिद्धमपि न स्यात् ।
शकुनान्तरेण नैतद् बाधितुमुत्साहचते बहु तत् ॥ ९४

वामाङ्गे यद् गदितं शुभाय तद्वत् प्रशान्तदिक्जातम् ।
क्षुतमाद्यैराचार्यैर्मन्ये सेयं प्रवाहोक्तिः ॥ ९५
यद्यारम्भे जातं मनसि कृतेऽपि क्षुतं तमारम्भम् ।
हन्त्येव नियतमथवा क्षुते न किंचिन्निरारम्भः ॥ ९६
श्रूयेत यादृगर्थं वचनं स्त्रीबालभाषितमकस्मात् ।
फलमपि तादृक्कार्ये मन्तव्यं कार्यार्थिभिः पान्थैः ॥ ९७
भयकृद् ग्रामे वन्यो ग्राम्योऽरण्ये तु निःफलः शकुनः ।
रात्रिचरोऽह्नि वन्ध्यस्तथा वृथाऽह्श्चरो रात्रौ ॥ ९८
तत्कालं संमिलिताश्चिन्तां याताः खरं रवन्तो वा ।
दधति भयं पान्थानां ग्रामे ग्राम्या वने वन्याः ॥ ९९
वामरवादपसव्यो ध्वनितः क्षेमोत्तराय लाभाय ।
न प्रतिलोमस्तित्तिरिरुन्नत्यै तोरणविरावः ॥ १००
क्षेम्यो वामध्वनितो धनकृद् यात्रासु दक्षिणध्वनितः ।
दक्षिणरवस्तु तित्तिरिरक्षोभ्यः प्रविशतो भवति ॥ १०१
यः कृत्वा विनिवृत्तः कार्याणि विदूरदेशकार्याणि ।
वामरवस्तद्वेश्मनि कपिञ्जलः कुशलमाख्याति ॥ १०२
कल्याणे पुरुषाणां गौरमृगा दक्षिणाः प्रपद्यन्ते ।
न समा न च वामगताः कृष्णैर्मिश्रा न दुष्टास्ते ॥ १०३
एकस्तु कृष्णसारः पथि दृष्टः कृष्णसर्पसमवेष्टः ।
नेष्टा गतिरस्य नृणामावेष्टनमस्य निधनाय ॥ १९४
नकुलानामपि धन्यं विषमाणां दक्षिणं गतं यातुः ।
लोमसिकायाः श्रेष्ठं दर्शनमथ गमनमुभयत्र ॥ १०५
सर्वत्र हंस-सारस-चकोर-हारीत-चक्रमिथुनानि ।
धन्यानि विरुतदर्शनयानैर्दात्यूहभासौ च ॥ १०६
शब्दः करायिकाया यात्रायां लाभदोऽपसव्याङ्गे ।
लट्टा च तारयातो तथाऽपरे चाषभासाद्याः ॥ १०७
पथि पथिकस्य प्रथमं प्रस्थाननिशीथिनीं समासाद्य ।
शंसन्ति वाहनेष्वपि वामरवाः फेरवाः कुशलम् ॥ १०८

मृगधूर्तस्य वनान्तर्मन्यन्ते सारमेयसामान्यम् ।
शश-सरट-ऋक्ष-गोधा-विषधरसाधरणाः सर्वे ॥ १०९
नृत्यं शुभाय शिखिनः स्वरास्तथैक-द्वि-षट्·····संख्याः ।
वहवः समृद्धये स्युर्नेष्टाः पञ्च-त्रि-चत्वारः ॥ ११०
सव्यापसव्यसंस्थैः समकालनिनादिभिः सजातीयैः ।
शकुनैस्तोरणसंज्ञैः सिद्धिर्गमने प्रवेशे च ॥ १११
यच्छुभवत् क्रमगत्या शब्दं न त्रिमिश्रयेत् द्वितीयेन ।
शकुनोऽनन्तरजातः स बाधते पूर्वकालोत्थम् ॥ ११२
व्याधिवधवन्धसंगरभक्षशुल्कग्रहगनष्टवीक्षादौ ।
प्रस्थानाद्विपरीतः शस्तः शकुनः प्रवेशे च ॥ ११३
वामस्थितः प्रयाणे रुवन्नुलूकः शुभाय नान्यत्र ।
न द्वारतोरणादौ न गृहशिरःप्रान्तमध्येषु ॥ ११४
वामाग्रदक्षिणेषु क्षयाय तिष्ठन् विभूतिदः पृष्ठे ।
दक्षिणविरुतः कुरुते विपदं गृध्रः प्रतिष्ठासोः ॥ ११५
भीतक्षुधितरुगर्दित-सुरतामिषगृध्रनीडसंसवताः ।
न ग्राह्याः शिशुमत्त्रस्तमत्तनद्यन्तराः शकुनाः ॥ ११६
यश्चानुकूलभावं कथयन्निव सन्मुखः समीपस्थः ।
चेष्टाद्यं निःशंकः करोति शकुनः स वै बलवान् ॥

इति भारद्वाजद्विज-वरलावण्यशर्म्मविरचिते शकुनप्रदीपे
जांघिकं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

द्वितीयं क्षेत्रिकप्रकरणम्

क्षेत्रिकमधुना शकुनं ब्रूमो मुनिसंमतेन मार्ग्गेण ।
त्रैलोक्ये यदधिगमात् पुंसामुत्पद्यते ज्ञानम् ॥ १
षड्भिः शतैः क्रमाणां शकुनं क्षेत्रं परीक्षितं राज्ञाम् ।
अर्द्धेन मध्यमानां स्यादधमानां तदर्द्धेन ॥ २
तत्तोरणैश्चतुर्भिर्मध्यक्षेत्रं विभज्य भूभागान् ।
त्रीनुपकल्प्यातस्तैस्त्रिधा प्रकुर्वीत फलकालैः ॥ ३
एकस्मिन्नपराह्णे पश्चिममासाद्य तोरणं क्षेत्रम् ।
तत्राधिवास्य दुर्गां निवेदयेत् कार्यमात्मीयम् ॥ ४
भूमीत्रयेऽपि देव्याश्चेष्टां दृष्ट्वा प्रवृत्तिविनिवृत्त्योः ।
व्रतदानजाप्यहोमैर्नयेन्निशां, तां निशान्तस्थः ॥ ५
पूष्टिं विधाय प्रथमं संप्राप्य तोरणं ततः प्रातः ।
ध्यात्वाऽष्टपत्रमब्जं तस्यान्तर्भारतीं ध्यायेत् ॥ ६
नीहारहारगौरां प्रभोर्म्मिनिर्भिन्नमोहतिमिरौघाम् ।
अन्तःप्रसादसुन्दर-मुखरागतरङ्गितोत्साहाम् ॥ ७
स्निग्धमधुरावलोकितमरीचिपीयूषशमितसन्तापाम् ।
सद्भावार्द्रशुचिस्मित-किरणावलिधवलितासनगाम् ॥ ८
भोगीन्द्रभोगविच्युतनिर्म्मोकसमुज्ज्वलांशुकाभरणाम् ।
निर्मलमुक्ताभरणद्युतिमसृणविलेपनच्छायाम् ॥ ९
सौम्यसमग्रावयवां हंसासननियतपरिकराबन्धाम् ।
वीणाक्षसूत्रपुस्तक-वरदानप्रगुणकरमालाम् ॥ १०
हृत्कमलमध्यपीठे देवीं ब्रह्मात्मजां प्रसन्नास्याम् ।
दुर्गायुतं तदग्रे क्रीडारसनिर्भरं नृत्यत् ॥ ११
अष्टासु जयां विजयामजितामपराजितां तथा गौरीम् ।
गान्धारीं विमलाङ्गीं दलेष्वमोघां च ध्यायेत ॥ १२
कपिलं तत्र महर्षिं ध्यानसुधापानमेदुरानन्दम् ।
अष्टासु दिक्षु चाष्टौ ध्यायेदिन्द्रादिदिङ्नाथान् ॥ १३

पीताभ-कपिल-कृष्ण-श्याम-धवलाङ्गहरितचित्रसिताः ।
दिक्पालाः कृष्णोऽधश्चिन्त्यो ध्याताऽरुणश्चोर्द्ध्वे ॥ १४
ओमित्यनुमितशीलां ह्लीमन्तःश्रीमवाप्य सन्नारीम् ।
स्वीयामुपेत्य, मुदिता ये ते वाग्देवतावर्गाः ॥ १५
तत्रावलोक्य दुर्गां दौर्गं सूक्तं पठेद् यदेकर्चम् ।
नामानि कृष्णिकाया मन्त्रं सारस्वतं जप्त्वा ॥ १६
दत्त्वैकं कुसुमाञ्जलिमुच्चार्य किरीटिनोऽभिधानानि ।
सिध्यत्वयं ममार्थो देवी चैवं हि विज्ञाप्य ॥ १७
एतावता ममैतत्कालेन चिकीर्षित ध्रुवं सिद्ध्येत् ।
इत्यन्वयेन पूर्वं प्रश्नं कार्यार्थिना कार्यम् ॥ १८
प्रश्नं प्रतिकूलं स्याद् यदा तु शकुनं विलोकितं द्विस्त्रिः ।
व्यतिरेकेण प्रष्टुं तदाऽधिकारो भवेन्नेति ॥ १९
कार्यस्य प्रतिकूलं यच्चिचटिका चेष्टते स्वयं प्रश्ने ।
.... सिद्धेरनुकूलतां याति ॥ २०
फलकालयोरियत्ता प्रश्नायत्ता भवेदिहं क्षेत्रे ।
प्रष्टुं विद्वान् वेत्ति हि, फलमिदमियता च कालेन ॥ २१

दुर्गानामानि

श्यामा कृष्णा शकुनिः शितिपक्षा पोदकी कुमारी त्वम् ।
दुर्गा देवी चटका धनुर्द्धरी पांडरी वराही त्वम् ॥ २२
पान्थजननी तथोमा ब्रह्मसुता शकुनदेवता त्वमसि ।
प्रत्यक्षे! देवि! भगवति! नमोऽस्तु ते देहि मे सिद्धिम् ॥ २३

अर्जुननामानि

पार्थोऽर्जुनः किरीटी बीभत्सुः श्वेतवाहनो विजयी ।
जिष्णुश्च सव्यसाची धनञ्जयः फाल्गुनश्चेति ॥ २४
नामान्यमूनि मन्त्रं सर्वत्र जपन्निराकुलः पश्येत् ।
चेष्टाद्यं पोदक्या बुधः प्रवृत्तौ निवृत्तौ च ॥ २५
दृष्टा दक्षिणचेष्टा वामरवा संमुखी विगतशंका ।

प्रोत्फुल्लनयनवदना हृष्टा फलदायिनी दुर्गा ॥ २६
दक्षिणपक्षं यदि वा पक्षावुत्क्षिप्य दिशति विजयर्द्धिम् ।
श्रियमुत्पुच्छयमाना, नृत्यन्ती संमुदं दिशति ॥ २७
भक्षोपयोगमैथुन-भूमिरुहारोहणानि दुर्गायाः ।
शान्ताश्रयविमलोदक-मज्जनपानानि सम्पत्त्यै ॥ २८
दक्षिणचरणेनाङ्गं दक्षिणमुल्लिखति कृषति वा चञ्च्वा ।
दक्षिणपक्षव्यावृत्तिमाधत्ते सिद्धये देवी ॥ २९
रुषितेव परुषवचना वक्त्रं वक्रयति वीक्षते रूक्षम् ।
उद्धषति गन्तुमिच्छति पृष्टं दर्शयति विनिद्राति ॥ ३०
अस्यति पलायते वा कम्पं वितनोति शिथिलयत्यङ्गम् ।
आलस्यभयविजृम्भण-मोहध्यानानि नाटयति ॥ ३१
मूत्रपुरीषे मुञ्चति कुरुते वान्ति धुनोति गात्राणि ।
दर्शयति वैमनस्यं पुस्थं (पुच्छं) त्रोटयति निद्राति ॥ ३२
वामां करोति चेष्टां काष्ठं घटयति भस्मनि स्नाति ।
धूल्याममम्भसि मलिने मूत्रपुरीषे च कंपे (पंके) च ॥ ३३
एवंप्रायाश्चेष्टा दुष्टाः स्युस्तावदन्वयप्रश्ने ।
व्यतिरेकप्रश्नेषु च सिद्धिं कार्यस्य शंसन्ति ॥ ३४
नयनपथं पान्थानां प्रस्थाने प्रथममेति यदि तुष्य ।
पान्थजननी जनानां जनयति मुख्य तदा लाभम् ॥ ३५
दुर्गामिथुनं दृष्टं भवति नराणां समग्रफलहेतुः ।
अर्द्धं फलार्द्धहेतुर्भयहेतुरदृश्यमानं तु ॥ ३६
दुर्गान्तरेण दुर्गां संगत्य समानमित्रसंपत्तिम् ।
यच्छति भृत्यं यदि वा, युवतिं पतिसंगता देवी ॥ ३७
दुर्गान्तरेण दृष्टः संहसा संगच्छते यदा विहगः ।
प्रभुलाभाय तदानीं तद्विश्लिष्टो वियोगाय ॥ ३८
दुर्गा विहगानुगता गतिचेष्टाद्यं यदा समाचरति ।
तन्मुख्यं दिशति फलं नूनं प्रतिपृष्टलग्ना तु ॥ ३९
प्रायेण प्राधान्यं दुर्गाया; पुंस्खगस्य गौणत्वम् ।

तारत्वे बलमधिकं पत्युर्देव्यास्तु वामत्वे ॥ ४०
नार्याः कार्यप्रश्ने वामैव गतिः प्रशस्यते खगयोः ।
पुत्रोत्पत्तिप्रश्ने पुत्राय खगः प्रथमदृष्टः ॥ ४१
पुंनामानं भूरुहमधिरूढः पुंस्खगो रुचिरचेष्टः ।
पुत्राय स्यात् श्यामा स्त्रीनाम्नि तरौ सुताहेतुः ॥ ४२
शाकुनिकस्य समानं पक्षिगममधिवासितं विजानीयात् ।
यस्तस्य दैवघातस्तत्कार्यार्थी प्रपद्येत ॥ ४३
तारा वामाभिमुखी पराङ्मुखी वामदक्षिणावर्त्ता ।
ऊर्ध्वाधोमुखभेदादष्टौ पृष्टाग्रयोर्गतयः ॥ ४४
वामादपसव्यं या गच्छति सा दक्षिणापसव्या च ।
ताराऽनुकूला नाम्नी प्रदक्षिणा वाऽनुलोमा च ॥ ४५
वामं दक्षिणदेशाद् यान्ती श्यामोपदिश्यते वामा ।
प्रतिलोमा प्रतिकूला सव्यावतारोद्धृताख्या च ॥ ४६
अन्धा गुलिकिः काण्डा स्खलिता दूरा कपाटिका च ।
ऊर्ध्वाधो नवधैवं दुष्टा तारा वितारा च ॥ ४७
फलमर्द्धमर्द्धतारा स्खलिताऽल्पवक्रमभिमतं वक्रा ।
साधयति युद्धमूर्ध्वा भयं कपाटाऽफलाः शेषाः ॥ ४८
वल्मीककोटरादौ तारा भूत्वा निलीयते सान्धा ।
गुलिकेव भुवि लुठन्ती पद्भ्यां या याति सा गुलिकिः ॥ ४९
या याति काण्डवेगात्क्षिपत्य परतो न याति सा काण्डा ।
या दुर्दुरीव याति स्खलितं स्खलितं त्वसौ स्खलिता ॥ ५०
सा भवति दूरतारा निकटीभूत्वा प्रयाति या दूरम् ।
अर्द्धपथाद् विनिवृत्ता कपाटरीत्या कपाटा तु ॥ ५१
उड्डीयोर्ध्वं गगने या तारा तदनु सा भवेदूर्द्ध्वा ।
अर्द्धपथे तिष्ठति या गच्छति चार्द्धात् द्विधार्द्धा सा ॥ ५२
गोमूत्रिकेव वक्रं गच्छन्ती वियति कथ्यते वक्रा ।
एभिर्दोषैर्मुक्ता देव्या ऋज्वी गतिः प्रोक्ता ॥ ५३
एका ऋज्वी तारा हन्ति भयं लाभदा द्वितीया तु ।

योगक्षेमावाप्ति परिपूरयते तृतीया सा ।। ५४
अधिवासनशकुनानामालोकनक्षणोत्थशकुन्तानाम् ।
संवादे बलमधिकं बलमूनं तद्विसंवादे ।। ५५
एका वारयति फलं वामा गन्तुर्भिये तृतीया तु ।
मरणाप्तये तृतीया यदि तारैकाऽपि विनिवृत्तौ ।। ५६
न वितारा न च तारा प्रवृत्तिकाले ततो निवृत्तौ तु ।
वामैकापि सुशान्ता श्यामा चित्तेप्सितावाप्त्यै ।। ५७
अनवादित्वं तारा वामा नियतं निषेधमाचरति ।
प्रश्नप्रयाणयोरपि शान्ता शान्तार्थयोर्देवी ।। ५८
लाभ-सुख-जीवितानां प्रश्नः शान्तः प्रशान्तचित्तस्य ।
हानि सुखात्यय-मृत्यु-प्रश्नो दीप्तो भृशार्त्तस्य ।। ५९
भस्मितदग्धज्वलितालिङ्गितधूमान्विता विमुच्य पञ्चैताः ।
शेषा दिशः प्रशान्ताः कालो विष्टयादिनिर्दोषः ।। ६०
दिक्कालप्रस्थानामात्मायत्तं प्रशान्तदीप्तत्वम् ।
स्वरचेष्टा गतिचेष्टा स्थानानां पुनरनायत्तम् ।। ६१
शान्तौ भौमाप्यरवौ दहनानिलगगनजाः स्वरा दीप्ताः ।
भावाः प्रसन्नमधुराः शान्ताः शोकादिभिर्मुक्ताः ।। ६२
वक्रादिदोषरहिता ऋज्वी तारागतिः प्रशान्ता स्यात् ।
गृहतोरणादि शान्तस्थानं दीप्तं कपालादि ।। ६३
दग्धायां दिशि दग्धं कार्यं ज्वलितासु दह्यमानं च ।
धूमान्वितासु वाच्यं ज्वलिष्यतीत्येव दिग्दीप्ते ।। ६४
पश्चिमनिशार्द्धयामाद्यावत् प्रथमं दिनस्य यामार्द्धम् ।
तावत् प्राची दीप्तेत्येवं यामाष्टके त्वन्याः ।। ६५
विषवद् द्वितयेऽप्येवं पावकदिक् दक्षिणायने ज्वलति ।
उत्तरमयनं प्राप्य ज्वलति प्रातर्दिगीशानी ।। ६६
ज्वलिता धूमाकुलिका छाया च जला च कर्दमवती च ।
धात्री च भस्मता चाङ्गारकनाम्नी च दिक् क्रमशः ।। ६७
विद्युद्वात्यावर्षण-हिमसन्ध्याघर्मदुर्दिनाद्येन ।

तिथ्यादिना च दीप्ते कालेनोत्पद्यते शकुनम् ॥ ६८
स्वरदीप्ते सति शकुने मिथ्यादोषाभिष्वङ्गकलहाद्यम् ।
चेष्टादीप्ताभिभवः फलहानिर्भवति दीप्ते तु ॥ ६९
दौर्गत्यं गतिदीप्ते स्थानविघातस्तदाश्रये दीप्ते ।
मिथ्याज्ञानाधिगमः संभवति प्रश्नदीप्ते तु ॥ ७०
दिक्कालचरणचेष्टागतिभावस्थानकार्यसंप्रश्नात् ।
यो वेत्ति शान्तिदीप्तान् तन्नास्ते शाकुनं ज्ञानम् ॥ ७१
चिलिश्चलिरवौ भौमौ चिकुरिति कूचीति निस्वनावाप्यौ ।
कीतुरिति तैजसः स्यात् स्खलिता नादाश्च ये केचित् ॥ ७२
चीचीति मारुतः स्यात् चुलिहि निनादश्च तादृशः कथितः ।
आम्बरमाहुश्चिरिरिति-चीकुरितीमं च विद्वांसः ॥ ७३
इत्येवं दश नादा दुर्गायाः पाञ्चभौतिकास्तेषु ।
भौमाप्यरवाः शान्ता मध्यौ मिश्रौ परे दीप्ताः ॥ ७४
प्रीता पार्थिवनादं करोति भिक्षादिलाभसंतुष्टा ।
सलिलार्थस्वरमाप्यं संलापे वृष्टिसमये च ॥ ७५
रतये तैजसनादं शुद्धावेशे च घर्मसमये च ।
कुरुते मारुतविरुतं विहगान्तरताडिता दुर्गा ॥ ७६
भुजगनकुलादिभीता गर्भार्त्ता रोगशोकसंतप्ता ।
अम्बररवेण जल्पति देवी दिवसावसानेऽपि ॥ ७७
पक्षेऽपि मारुतेन स्वरेण भीतिं करोति पाण्डविका ।
व्योमरवं कुर्वाणा श्यामा रुधिरस्रुतिं कुरुते ॥ ७८
पार्थिवरवानुवर्ती तेजोनादोऽक्षयं फलं कुरुते ।
क्रमशस्तु भूजलानलनादा वाञ्छाधिकफलावाप्त्यै ॥ ७९
क्रमशो यदि पाण्डविका नादान् पञ्च प्रपञ्चयत्युच्चैः ।
पार्थिवमुख्यानधिकं मनोरथेभ्यस्तदा दिशति ॥ ८०
सुखदुःखजीवितात्यय-गमनागमलाभहानिपृच्छासु ।
ओमिति शंसति तारा वामा तु निषेधमाचरति ॥ ८१
उत्पत्स्यति समेष्यति जीविष्यति सेत्स्यति प्रदास्यति च ।

इत्यन्वयेन शान्तः प्रश्नो दीप्तस्तु यो नेति ॥ ८२
आरम्भेऽस्मिन् किं स्यादिति योऽसौ भवति संप्रश्नः ।
तस्मिन् गुणदोषेभ्यः फलाफलं सर्वमप्यूह्यम् ॥ ८३
अन्वयतो व्यतिरेकात् संशयपृष्टा वशाच्च कार्यस्य ।
कर्त्तव्यनिर्णयार्थं वीक्षेत मुहुर्मुहुः शकुनम् ॥ ८४
आद्यदिने योद्धव्ये शकुनैर्विजयाय यात्रिकविरुद्धः ।
दिवसान्तरिते युद्धे क्षेम्यः प्रास्थानिकः शकुनः ॥ ८५
वामाङ्घ्रिणा यदङ्गं चञ्च्वा वामं तथा यदुल्लिखति ।
तस्मिन्नङ्गे योद्धुर्भवेत् क्षतं सुशिक्षितस्यापि ॥ ८६
वृष्टिनिमित्तं प्रश्ने मूत्रं वान्तिर्जलारजःस्नानम् ।
असमापत्यप्रसवो नीडं चञ्च्वा श्रये देव्याः ॥ ८७
वरुणदिगाश्रयशाड्वलसलिलाश्रयपङ्कसंगमाद्यं च ।
तारागतिसुरतलीलाप्रमुखं यत्तद्भवेद् वृष्टयै ॥ ८८
रविदीप्तां श्रयति दिशं प्रविशत्कोणोऽवलोकयत् पूर्वम् ।
भूमौ करोति नीडं सूते युग्मान्यपत्यानि ॥ ८९
अनिला नवाम्बराणां करोति रावं समुत्सृजेद् वर्चः ।
शुष्कतरुभस्मकोटरवल्मीकाद्यं समारोहेत् ॥ ९०
दुष्टां करोति चेष्टां गच्छति वामं प्रवेपयत्यङ्गम् ।
मज्जति धूल्यामथवा श्यामा वृष्टिं निवारयति ॥ ९१
आर्द्रादौ स्वात्यन्तं दशकं भानां निवेश्य भूत्रितये ।
वीक्ष्येत यत्र दुर्गा तारा तस्मिन् भवेद् वृष्टिः ॥ ९२
अर्घप्रश्ने तारा महर्घतायै प्रशान्तचेष्टा च ।
वामा समर्घतायै धान्यस्य विदुष्टचेष्टा च ॥ ९३
सन्धिप्रश्ने दुर्गा निजविहङ्गसमागमेन संधत्ते ।
संघटितमिथुनविरहान्मन्तव्यो विघटितः सन्धिः ॥ ९४
इतरेतरभक्षग्रहवृक्षाश्रयमैथुनानि दुर्गायाः ।
सन्धिं दधति तथेयं तारागतिदक्षिणावर्त्ता ॥ ९५
मृगयुर्मृगयां गच्छन् मार्गे मार्गे विमार्गयन् दुर्गाम् ।

वामरवां तारां वा गृह्णीत मृगेष्वदृष्टेषु ॥ ९६
स्थानीकृतेषु यदि वा दृग्गोचरमागतेषु वध्येषु ।
प्रावेशकेन यायाद् व्याधः शकुनेन वधमिच्छन् ॥ ९७
अधिरोहन्ती हृद्यं स्थानं देवी हिता वितारापि ।
ताराऽपि न प्रशस्ता निन्द्यं स्थानं समारूढा ॥ ९८
यान्ती रौत्यथ गत्वा तिष्ठति निन्द्यं निवर्त्तते पश्चात् ।
विष्टां करोति दीप्ते प्रविशति सांगं फलं हन्ति ॥ ९९
दर्शनचेष्टास्वरगतिभक्षग्रहणेष्वधिकमधिकं स्यात् ।
क्रमशो बलमेतेषां समुदायः सकलफलहेतुः ॥ १००
यद्येषां पञ्चानां मध्याद् भूमित्रये तु पाण्डविका ।
गमने निवर्त्तने वा न किमप्याचरति तद् यदा ॥ १०१
अपशकुनादधिकतरं भयहेतुर्मूढशकुनमाख्यातम् ।
कार्योत्सुकोऽपि यायात् तस्मात् केनापि शकुनेन ॥ १०२

॥ इति दुर्गायाः ॥

श्व-श्वान-भलह-भषण-कौलेयक-कपिल-जागरूकाश्च ।
मण्डल-कुक्कुर-यक्षाः शुनकं सुरमासुतं चाहुः ॥ १०३
विप्र-क्षत्रिय-वैश्याः शूद्राख्याः कारवश्च पञ्चैते ।
सित-रक्त-पीत-मेचक-विमिश्रवर्णाः क्रमात् श्वानः ॥ १०४
एकैकमेकवर्णं स्वस्थं संभोज्य शुनकमधिवास्य ।
पृच्छेत् कार्यं पश्चात् विलोकयेत्तत्कृतां चेष्टाम् ॥ १०५
यद्यद्दक्षिणमङ्गं दक्षिणचरणेन मण्डलः स्पृशति ।
तस्यानुरूपलाभं ददाति शान्ताश्रये प्रश्ने ॥ १०६
मूर्द्ध-ललाट-श्रवण-भ्रू-चक्षु-नासिकौष्ठसृज्वानि ।
हनु-कण्ठ-हृदय-कक्षा-ककुदोदरपार्श्व-गुह्यानि ॥ १०७
पृष्ठोरु-पुच्छ-जङ्घा-कर-चरणतलानि यानि चान्यानि ।
अङ्गानि नयन-नासा-रदन-नख-करांह्रि-रसनाभिः ॥ १०८
पश्यति जिघ्रति विलिखति कण्डूयति मार्ष्टि परिदशति लेढि ।

दक्षिणतोऽथ वलित्वा श्रेष्ठः श्वा दक्षिणाङ्गेन ॥ १०९
दक्षिणकटिना शेते दक्षिणचरणेन मूत्रयत्यथवा ।
उपविशति दक्षिणेन पार्श्वेन श्वा शिवं शंसेत् ॥ ११०
मेहति शुभप्रदेशे श्रयते शान्तां दिशं प्रदेशं च ।
अधिरोहति शय्यासन-सद्म-प्रासाद-हर्म्याणि ॥ १११
मेहनशुभः शुभोऽम्भः-संभृतसंभारपूर्णकुम्भेषु ।
पर्यंक-पंक-गोमय-दूर्वाफल-पुष्प-वल्लीषु ॥ ११२
क्षीरतरुतोरणध्वज-मृत्स्नाव्यजनातपत्रदहनेषु ।
स्वस्तिककांजिकधानी-सुन्दरगृहयज्ञपात्रेषु ॥ ११३
सिद्धान्नामिषविष्टाफलादिपूर्णाननो लपन्नसकृत् ।
दृष्टः शुभाय भषणो नेष्टो यादृग्वदामस्तम् ॥ ११४
जृम्भण-वमन-पलायन-चिन्तानिद्राङ्गभङ्गतनुकम्पाः ।
मूर्द्ध-श्रवण-विधूनन-तनुचर्वण-कासहिक्कां च ॥ ११५
भस्मोद्धूलन-लोचन-खननाक्रन्दार्त्तभक्षपरिहाराः ।
रोदन-नेत्रनिमीलन-दृषदाग्रह-भास्वरालोकाः ॥ ११६
दीप्ताश्रयभयपीडाविष्टामोक्षादिकं च यद्दीप्तम् ।
निन्द्यं शान्तप्रश्ने दीप्तप्रश्ने भयं हन्ति ॥ ११७

इति भरद्वाजद्विजवरसुत-श्रीलावण्यशर्मविरचिते शकुनप्रदीपे क्षेत्रिकप्रकरणं द्वितीयं समाप्तम् ॥

तृतीयं आकस्मिकप्रकरणम्

स्थानस्थानां शकुनं यदकस्माद्दिग्विभागतो भाति ।
शान्तप्रदीप्तभेदात् व्यक्तफलं प्रथितमागन्तुः ॥ १
मरुवृद्धानुभवादिह मयाऽयमागन्तुरभिहितः शकुनः ।
तत्समयव्यवहारिभिरभिधानैर्दिग्विभागानाम् ॥ २
उदयास्तौ मूलाख्यौ उत्तर-याम्यौ ध्रुव-निवासनामानौ ।
नैर्ऋत-वायव्यौ च प्रमाण-खरकाह्वयौ नित्यम् ॥ ३
रूढे एव भवेतामीशानाग्नेय-कोणयोरभिधे ।
सहजं रविगतिजनितं तेषां विन्द्यात् प्रशान्तदीप्तत्वम् ॥ ४
प्राच्यं मूलं दीप्तं प्रायस्तिग्मांशुविम्बमुक्तमपि ।
रवियोगात् प्रकृतेरपि दीप्ततरा स्याद्दिगैशानी ॥ ५
एकान्तशान्तमेकं मन्यन्ते मारवा निवासाख्यम् ।
अपरं च मूलमपरें शान्तं ब्रूतेऽपि नार्क्केण ॥ ६
प्राच्ये मूले दीप्तान् शकुनानाकस्मिकान् समाकर्ण्य ।
ब्रूयान्न ममेत्येते मत्तो महतस्तु वार्त्तायै ॥ ७
पश्चिममूले दीप्ताः पश्चिमसन्ध्यासमुत्थिताः शकुनाः ।
शस्त्राग्निचौरभूप-प्रभृतिभयोत्पादकाः सद्यः ॥ ८
आग्नेय्यपि दिग् दीप्ता स्वरूपतो भवति किंतु रविमुक्ताम् ।
केऽपि क्वापि पुनस्तां गृह्णन्ति निवाससंवासात् ॥ ९
यस्योटजे निवसतो निवासमासाद्य जायते शकुनः ।
मासार्द्धमस्य न चिरात् पुंसः सौधानि साधयति ॥ १०
ग्रामारामा-गृह-परिखा-वप्रस्य शाश्वतारम्भान् ।
सिद्धिं निवासशकुनो नयति मुखोद्वाहमुख्यांश्च ॥ ११
प्राप्य प्रमाणकोणं यस्य स्वस्थस्य जायते शकुनः ।
तस्याकस्मात् किञ्चित् सत्वरमुत्पद्यते कार्यम् ॥ १२
न प्रारब्धं सिध्यति न प्रस्थानं प्रमाणमाप्नोति ।
शकुने प्रमाणजाते विघटेत समागतः सन्धिः ॥ १३

विघटितमर्थं घटयति संशयितं वस्तु साधयत्यचिरात् ।
प्रत्यानयति नीतं प्रमाणकोणोदयः शकुनः ॥ १४
प्रत्यूहोपहतानां दिग्मूढानां मतिभ्रमार्त्तानाम् ।
प्रायः प्रमाणशकुनः साधीयान् कान्दिशीकानाम् ॥ १५
रिक्तीकरोति पूर्ण्णं रिक्तं पूर्ण्णीकरोति नियमेन ।
प्रायः स्वरूपदीप्तः शकुनः खरकप्रदेशोत्थः ॥ १६
उत्साहितोत्थमनसां राज्ञां परमोषिणां जिगीषूणाम् ।
निरुपायोद्विग्नानां साधुः खरके सदा शकुनः ॥ १७
चौर्यावस्कन्दाहृत-परसंपत्संभृत-प्रवेशानाम् ।
सद्यो रिक्तीकरणः खरके शकुनः समुद्भूतः ॥ १८
भूमिं गतोऽपि जीवति निगडैरपि संगतो विमुच्येत ।
युद्धचन्ते सन्नद्धाः क्रोधान्नोदायुधा योधाः ॥ १९
शकटारोपितभाण्डोऽप्युच्चलति च नैव यातुकामोऽपि ।
ध्रुवदेशोत्थे शकुने किन्त्वेकः प्रविशति स्वस्थः ॥ २०
कारानिकारभाजां पदच्युतानामुदग्ररोगाणाम् ।
अभियुक्तानां बलिभिर्ध्रुवशकुनः सर्वदा शुभदः ॥ २१
ईशानोत्थे शकुने विशेषतः सूर्यमण्डलाक्रान्ते ।
रिपुवेष्टित इव दूरं स्थानं मुक्त्वा पलायेत ॥ २२
नीचैरवरोहन्तस्तारं यान्तः प्रदक्षिणाऽऽवर्त्ताः ।
घ्नन्ति भयं भीतानां कृष्णाः सर्पाश्च मार्जाराः ॥ २३
तिक्तं नदंतपावनमापतति सम्मुखं यत्र तदाह्नि ।
लभते भोजनमिष्टं दृष्टं द्वैपायनेनैतत् ॥ २४
उच्चैरवरोहन्तो वामं यान्तोऽथ वामनावर्त्ताः ।
भयमुपनयन्ति दृष्टाः कृष्णाः सर्पाश्च मार्जाराः ॥ २५
पूर्ण्णाननाः समृद्धयै मार्जारभुजङ्गमादयः क्रूराः ।
किंपुनरपरे शकुनाः शिष्टं चेष्टादिकं येषाम् ॥ २६
गर्भगृहे शय्यादौ देहि(ह)ल्यामाज्यकुम्भमुख्येषु ।
न शुभावहा घृताद्याः सिद्धयै ब्रह्म (बाहच) प्रदेशे तु ॥ २७

दिक्षु फलं दिक्तुल्यं रथ्या-केदारदेवभवनेषु ।
नृपवेश्मचत्वरादौ निर्यान्त्यो देशभङ्गाय ॥ २८
रक्तपिपील्यः शुभदाः कांजिकधानीकुशूलमुख्येषु ।
चुल्लीगृहमूर्द्धादिषु न शुभा निन्द्यप्रदेशे च ॥ २९
दक्षिणमारुह्यचोन्नतमुत्तरति यदाऽध्वगस्य वामेन ।
पल्ली तल्लीलाभिर्लम्भयति मनोरथानधिकम् ॥ ३०
दर्शनविरुते कुरुते वामे पृष्टौ तथेप्सितं गन्तुः ।
दक्षिणपुरःस्थिताया गृहप्रवेशे गृहोल्यास्तु ॥ ३१
स्त्रीलाभं रतिलाभात् युद्धाद् युद्धं समागमं संगात् ।
विरहाद् विरहं भक्षाल्लाभं पल्ली समाख्याति ॥ ३२
शान्तायां दिशि शान्तदीप्तं दीप्तासु दिक्षु गृहगोधा ।
दिशति फलं पुरुषाणां स्वरेण दिग्भागसाम्याच्च ॥ ३३
ईक्षण-कीर्त्तन-विरुतैर्नेष्टः कस्यापि भवति कपोतः ।
यस्य हि वर्च्चो मुञ्चति मू(मौ)लौ निर्वासिकस्तस्य ॥ ३४
नेष्टो गृहोपविष्टश्छत्रासनवाहनादिसंस्थो वा ।
धूम्रः श्वित्रः पाण्डुः शुभाय नायं प्रभेदोऽपि ॥ ३५
यच्चाङ्गस्फुरणाद्यं शारीर वा वस्तुगमप्येतत् ।
भौमान्तरिक्षदिव्यादाकस्मिकमुच्यते तदपि ॥ ३६
दक्षिणमङ्गं पुंसः स्त्रियश्च वामं शुभावहं स्फुरितम् ।
नीचोच्चमध्यमान्तः फलति च गात्रोचितः स्पन्दः ॥ ३७
धनवृद्धिरन्त्रकम्पे नाभिस्पन्दः स्वदेशनाशाय ।
पृष्ठे पराजयाय स्फुरणं विजयाय हृद्यस्य ॥ ३८
प्रियसंगमाय बाह्वोः कम्पो हृत्कमलसंभवो भीत्यै ।
मूर्द्धि्न स्फुरते राज्यं लभते सीमन्तिनीं बस्तौ ॥ ३९
स्फुरितस्थानेषु यदा जायन्ते पिटिक-मशक-तिलकानि ।
चिह्नव्रणानि सदृशं स्फुरितेन फलं प्रयच्छन्ति ॥ ४०
कष्टं कलयति नष्टं जातं सुखमुन्मुखं विनायत्तम् ।
शङ्खोदर-परिपाण्डुर-बिन्दूत्कर-दन्तुरैर्नखरैः ॥ ४१

मार्जाराखुभुजङ्गमपृथुरोमतिमीन् विहाय सर्वेऽपि ।
दुर्भिक्षाय भवन्ति हि स्वजातिपिशिताशनाः सत्त्वाः ॥ ४२
परयोनिं गच्छन्तो नृखरावपहाय देशनाशाय ।
सर्वस्यापि हि जगतः प्रकृतेः स्याद् विकृतिरुत्पातः ॥ ४३
सहकार-बकुल-कदली-पुंनागाशोक-सिल्लि-पिचुमन्दाः ।
वेश्मनि शुभाय रूढाः प्रियंगवोऽन्येऽपि माङ्गल्याः ॥ ४४
याम्यादिसु प्ररूढाः प्रदक्षिणं दिक्षु वेश्मनो न शुभाः ।
उदगादिषु क्षेम्याः प्लक्षवटोदुम्बराऽश्वत्थाः ॥ ४५
कर्कन्धूरुत्तरेण याम्यां करकर्द्दमीश्च वंशश्च ।
प्रत्यग् भवेत् कपित्था शुभाय रूढा तथाऽऽमलकी ॥ ४६
शेलुः पीलु पलाशा बिभीतकाङ्कुल्लकोविदाराश्च ।
आरामे न च वेश्मनि शस्यन्ते भूरुहा रूढाः ॥ ४७
सिद्धार्थकं हरिद्रां सितगिरिकर्ण्णिं च मातुलिङ्गीं च ।
नीलीं चं निलयमध्ये न धारयेत् तिन्तिडीकां च ॥ ४८
नववाससि तल्पे वाभिनवमुहूर्त्तोपस्कृतपरिधाने ।
यत्नेन वीक्षणीयं यत्तत्त्रोच्यते लक्ष्म ॥ ४९
उर्ध्वं रेखाद्वितयं तिर्यक्द्वितयं विभाज्य शयनीयम् ।
आसनमथोत्तरीयं नवभागं भावयेद् बुद्धया ॥ ५०
कोणांशाश्चत्वारो देवा मध्ये त्रयोऽथ रक्षांसि ।
कोणप्रान्तान्तरगौ भागौ मानुष्यकावस्मिन् ॥ ५१
ये तत्र देवतांशास्तेषु ज्वलितं विपाटितं भिन्नम् ।
पङ्कमषीतैलाद्यैर्दिग्धं सिद्धिप्रदं वासः ॥ ५२
सुतजन्म मानुषांशे रोगो मृत्युश्च रक्षसां भागे ।
तल्पस्य च वसनस्य च नेष्टं प्रान्तोद्गतं लक्ष्म ॥ ५३
ध्वजकमलवर्द्धमानच्छत्राम्बरतोरणानुकारेण ।
छेदाकृतिः समृद्धयै यदि जाता राक्षसांशेऽपि ॥ ५४
वेताल-कालकासर-काकोलूकाहिकंसकंकाशम् ।
अमरांशेऽपि न शस्तं छेदाकृति लक्ष्म लेखाद्यम् ॥ ५५

निवर्त्तते प्रेतविधौ क्षुतं स्वपक्षक्षयाय जायेव (?) ।
वधकक्षयार्थमचिराद् वैरहतोत्पाटनारम्भे ॥ ५६
नववस्त्राभरणभृतः क्षुतं न तादृग्विधस्य लाभाय ।
स्नानान्ते दीप्तायां दिशि दुष्टस्नानहेतुः स्यात् ॥ ५७
किंस्यादिति मतिमन्तुः क्षुतं शंसयितवस्तुसंसिध्दयै ।
सिद्धान्ते तज्जातं कार्यस्य विनाशनायैव ॥ ५८
उद्वासयितुं वेश्मनि सरथाः कुर्वन्ति यन्मधुच्छत्रम् ।
दुर्गा करोति नीडं कुर्याद् वल्मीकमुपदीका ॥ ५९
देशोद्वासनहेतुर्निशासु जायेत सपदि धनुरैन्द्रम् ।
बहवः प्रसवविकारा राज्ञामुन्मार्गयायित्वम् ॥ ६०
ग्रामोद्वासनहेतुः ग्रामे नगरे च तत्पतिवधाय ।
प्रविशन्ति सिंहभल्लुकगोमायुतरक्षुमुख्यास्तु ॥ ६१
गृहपतिवधाय वेश्मनि विशन्ति काकारिपिंगलकपोताः ।
दुर्गागृध्रप्रमुखाः पतत्रिणो निधनमुपयान्ति ॥ ६२
कुलनिधनमहाविग्रहघोरव्याधिप्रसंगदुःप्रसवाः ।
आचारातिक्रमणं परस्परं द्वेषसंरम्भः ॥ ६३
उत्पातद्वयमेतन्महाभयं सर्वदा वदन्त्यार्याः ।
मैथुनसंस्थः काको यदि वा दृश्येत धवलाङ्गः ॥ ६४
काकस्य वृष्टिहेतोर्नीडं दिक्षु प्रशस्यते तिसृषु ।
दुर्भिक्षमरकहेतुर्भवति स याम्येषु कोणेषु ॥ ६५
मूर्द्धि न तरोर्बहु वर्षति मध्ये मध्यं न वर्षति स्कन्धे ।
जाते काककुलाये शुष्कतरौ वर्षति न जातु ॥ ६६
भूमौ भग्नमहीरुहवल्मीके······· कोटरतटेषु ।
काकोलस्य कुलायं जातं देशस्य नाशाय ॥ ६७
अण्डानि वारुणानलमारुतपौरंदराभिधानानि ।
काकानामाद्यन्ते वृष्ट्यावृष्टे विदुष्टेऽध्वे ॥ ६८
न शिवा शिवा रटन्ती भास्करदग्धासु तिसृषु काष्ठासु ।
पञ्चसु शान्तासु शुभेत्येवं शास्त्राहतपन्था: ॥ ६९

शान्तप्रदीप्तभेदात् फलभेदं प्राप्य विस्तरं कर्त्तुम् ।
यामाष्टकस्य योगादार्यैर्दिक्चक्रमाख्यातम् ॥ ७०
यात्रास्वपि वामरवा शिवा शिवा शान्तदिक्षु नान्यासु ।
दक्षिणरवाऽपि शान्ते शस्ता शास्त्रप्रमाणेन ॥ ७१
प्रत्येकं सप्तानां शिवारवानां फलान्युपात्तानि ।
विस्तरशीलैरार्यैः प्रशान्तदीप्तत्वमाश्रित्य ॥ ७२
प्रायः प्रयाणहेतोर्वामरवा संपदे शिवा गन्तुः ।
नेष्टा दक्षिणनादा, तत्र विशेषो न दिग्जनितः ॥ ७३
देशोदयायाप्रतिमप्रभावा वनौषधीनामधिका फलर्द्धिः ।
सकामवर्षित्वमथाम्बुदानां धर्मप्रवृत्तिश्च सुराजता च ॥ ७४

॥ इति श्रीलावण्यशर्मविरचिते शाकुनशास्त्रे आकस्मिकं प्रकरणम् ॥

॥ ग्रन्थाग्रम् ३८८ ॥

